IJAER/April-May 2013/Volume-2/Issue-3/Article No-15/491-496 ISSN: 2278-9677

International Journal of Arts & Education Research

सांख्य धर्म और ईश्वर

अश्विनी कुमार शमा*[1]

[1]शोधकर्त्ता, सांई नाथ वि-वविद्यालय, राँची, झारखण्ड।

सांख्य दर्शन

सांख्य-दर्शन द्वैतवादी है। कहा जाता है कि भगवान विश्णु के पंचम अवतार तथा ब्रह्म जी के मानस पुत्र नारद जी के भ्राता महर्शि कपिल इसके प्रवर्तक थे। महर्शि कपिल राजा कदर्भ तथा माता देवहुति के पुत्र थे। इन्होंने ही अपनी माता को सर्वप्रथम मोक्ष प्राप्ति का रास्ता प्रदर्शित किया था सांख्य के अनुसार दो प्रकार के तत्व हैं पुरूश और प्रकृति। अपने-अपने अस्तित्व के लिए पुरूश और प्रकृति परस्पर निरपेक्ष हैं। पुरूश चेतन है। चैतन्य इसका आगुन्तक गुण नहीं वरन् स्वरूप ही है। वस्तुतः पुरूश शरीर, मन तथा इन्द्रिय से भिन्न है यह नित्य है यह सांसारिक वस्तुओं तथा व्यापारों का अवलोकन अलग से ही करता है। वह न तो स्वयं कोई कार्य करता है न इसमें कोई परिवर्तन ही होता है। जिस तरह कुर्सी, पलंग इत्यादि भौतिक वस्तुओं के उपयोग के लिए मनुश्य भोक्ता है उसी तरह प्रकृति के परिणामों के उपयोग के लिए उपभोक्ताओं की आवश्यकता है। यह भोक्ता पुरूश जो प्रकृति से भिन्न है। प्रत्येक जीव के शरीर से संपर्कित एक-एक पुरूश है। जिस समय कुछ मनुश्य सुखी पाये जाते हैं उस समय में कुछ मनुश्य दुःखी भी रहते हैं। कुछ का देहान्त हो जाता है। फिर भी कुछ जीवित रहते हैं अतः पुरूश एक नहीं अनेक हैं।

सांख्य दर्शन निरी-वरवादी है। इसके अनुसार ईश्वर का अस्तित्व किसी प्रकार सिद्ध नहीं किया जा सकता है। संसार की सृश्टि के लिए ईश्वर का अस्तित्व आवश्यक नहीं है, क्योंकि पूरे संसार के निर्माण के लिए ही प्रकृति ही पर्याप्त है। शाश्वत् तथा अपरिवर्तनशील ईश्वर संसार की सृश्टि का कारण नहीं हो सकता। क्योंकि कारण तथा परिणाम वस्तुतः अभिन्न होते हैं। कारण ही परिणाम में परिणत हो जाता है। ईश्वर संसार में परिणत नहीं हो सकता। क्योंकि ईश्वर परिवर्तनशील नहीं माना जाता है। सांख्य के भाश्यकार विज्ञानभिक्षु यह सिद्ध करने का प्रयत्न करते है कि सांख्य ईश्वर के अस्तित्व को एक विशिश्ट पुरूश के रूप में मानते हैं। उनका कथन है कि ई-वर प्रकृति क्षा द्रश्टामात्र है, सृश्टा नहीं।

ईश्वर के निशेध के विशय में सांख्य दर्शन में जो युक्तियाँ दी गयी हैं उनके सन्दर्भ में डा0 बलदेव उपाध्याय की विवेचना उल्लेखनीय है। उनका कथन इस प्रकार से है -

'सांख्य के माननीय आचार्यों की एकमात्र सम्मति है कि जगत् की रचना तथा कर्मफल-प्रदान आदि कार्यो के लिए ईश्वर की सत्ता मानने के लिए कोई आवश्यकता नहीं है। सांख्य सूत्रों ने स्पश्ट शब्दों में प्रतिपादित किया है कि ईश्वर पच्चावयव वाक्यों की सहायता से सिद्ध नहीं किया जा सकता। ई-वर सिद्धेः- सा स0 193, प्रमाणाभामात्र तदिसद्धि-सांख्यसूत्र 5/10, सम्बन्धाभावात्रानुमानम्। सांख्य सूत्र 5/101 ई-वर तार्किक

युक्तियों का विशय नहीं है। अतः सांख्यसूत्र प्रमाणों के द्वारा ई-वर की असिद्धि पर जोर देते हैं, परन्तु ई-वरकृश्णा तथा कारिका के टीकाकारों ने स्पश्टतः ई-वर का निशेध किया है।''

1. ''कार्यभूत जगत् का कर्त्ता मानना तो उचित है ही, पर ईश्वर में उसकी कर्तृतासिद्ध नहीं हो सकती। ईश्वर स्वयं निर्व्यापार-व्यापारहीन है। अतः इस परिवर्तनशील जगत् का वह क्रिया-ीील कारण कभी नहीं हो सकता।

2. चेतना पुरूश की कार्य में प्रवृत्ति स्वार्थमूलक होती है इस जगत् की रचना में ईश्वर को कोई भी स्वार्थ नहीं जान पड़ता, क्योंकि ईश्वर पूर्णकाम है इसकी कोई भी इच्छा नहीं है जिसकी पूर्ति के लिए वह इस व्यापार में प्रवृत्त होगा।

3. जगत् के व्यापार में ईश्वर की प्रवृत्ति के कारणवश मानना युक्तियुक्त नहीं है क्योंकि सृश्टि के पहले विशय शरीर तथा इन्द्रिय के उत्पन्न न होने से जीवों में दुःख का सम्पर्क ही नहीं है। जिसके नाश की अभिलाशा ईश्वर में कारूण्य उत्पन्न करेगी। कारूण्य से जगत् की उत्पत्ति और उत्पत्ति होने पर दुःखी प्राणियों की दीन दशा को देखकर कारूण्य की उत्पत्ति यदि मानी जाए तो यह तर्क अन्योन्याश्रय दोश से दूशित होने के कारण नितान्त हेय रहता है। ऐसी दशा में ईश्वर में न तो कोई स्वार्थ ही दृश्टिगोचर होता है और न ही कारूण्य की उत्पत्ति के लिए युक्ति मिलती है। अतः बाधा होकर ई-वर का निशेध करना ही पड़ता है किन्तु विज्ञानभिक्षु इसे मानने के लिए तैयार नहीं है। वे सांख्य को निरी-रर नहीं मानते। कर्तृव्यशक्ति सम्पनन इश्वर की सिद्धि भले न हो, परन्तु ईश्वर जगत् का साक्षी है जिसके सन्निधिमात्र से प्रकृति जगत के व्यापार में निरत होती है - परिणाम धारण कर जगत् की रचना में प्रवृत्त होती है, जिस प्रकार चुम्बक अपने सान्निध्यमात्र से लोहे में गति पैदा करता है। तत्तिधानादाधिश्ठातृत्वं मणिवत्-सांख्य सूत्र 1/96।''

योग दर्शन

महर्शि पंतजलि योग के प्रवर्तक है। योग तथा सांख्य में बहुत अधिक साम्य है। योग सांख्य के प्रमाणों और तत्वों को मानता है। यह सांख्य के 25 तत्वों के साथ-साथ ई-वर को भी मानता है। योग दर्शन का प्रमुख विशय योगाभ्यास है। सांख्य के अनुसार मोक्ष-प्राप्ति का साधन विवेक ज्ञान है। विवेक ज्ञान की प्राप्ति प्रधानतः योगाभ्यास से ही प्राप्त हो सकती है। ''योग'' चित्तवृत्ति के निरोध को कहते हैं। चित्त की पाँच प्रकार की भूमिकायें हैं।

पहली भूमि ''क्षिप्त'' कहलाती है इसमें चित्त सांसारिक वस्तुओं में क्षिप्त अर्थात् चंचल रहता है।

दूसरी भूमि ''मूढ़'' कहलाती है इसमें चित्त की अवस्था निद्रा के सदश अभिभूत रहती है।

तीसरी भूमि ''विक्षिप्त'' कहलाती है। यह क्षिप्त से अपेक्षाकृत :ाान्त अवस्था है किन्तु बिल्कुल शान्त नहीं है। इस चित्ता-भमियों में योगाभ्यास सम्भव नहीं है। चौथी तथा पाँचवी भूमिका ''एकाग्र'' तथा ''निरूद्ध'' कहलाती है। एकाग्र अवस्था में चित्त किसी ध्येय में निविश्ट या केन्द्रीभूत रहता है। निरूद्धवस्था में चिन्तन का भी अन्त हो जाता है। एकाग्र तथा निरूद्ध योगाभ्यास में सहायक है। योग दो प्रकार के होते हैं -

Copyright © 2012 Published by IJAER. All rights reserved.

 ISSN: 2278-9677

(1) संप्रज्ञात (2) असप्रंज्ञात

संप्रज्ञात उस योग समाधि को कहते हैं जिसमें चित्तध्येय विशय में पूर्णतया तन्मय हो जाता है जिससे चित्त को इसके विशय का पूर्णतया स्पश्ट ज्ञान होता है।

असंप्रज्ञात उस योग को कहते हैं, जिससे मन की सभी क्रियाओं का निरोध हो जाता है परिणामतः ध्येय-विशय के साथ-साथ अन्य सभी विशयों के ज्ञान का लोप हो जाता है। केवल स्वंप्रका-ा आत्मा ही विशिश्ट रह जाता है।

योगाभ्यास के आठ अंग है जो योगांग कहलाते है यम, नियम आसान, प्रणयाम, पव्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि।

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रसचर्य और अपरिग्रह का अभ्यास करना ही ''यम'' है। शौच, सन्तोश, तप, स्वाध्याय तथा ई-वर का ध्यान इन आचारों का अभ्यास ''नियम'' कहलाता है। आनन्दप्रद शारीरिक स्थिति को ''आसान''कहते है। नियंत्रित रूप से :वास के ग्रहण धारण तथा त्याग को प्राणायाम कहते है। इन्द्रियों को विशयों से हटाने का नाम ''इन्द्रियसंयम'' अर्थात ''प्रत्याहार'' है। चित्त को शरीर के अंदर या बाहर की किसी विशय का सुदृड़ तथा अविराम चिन्तन ''ध्यान'' कहलाता है। ''समाधि'' चित्त की वह अवस्था है। जिसमें ध्यानशील चित्त ध्येय में तल्लीन हो जाता है।

योग दर्शन को संश्वर सांख्य कहते है और कपिल को निरीश्वर सांख्य योग के अनुसार चित्त की एकाग्रता के लिए तथा आत्मज्ञान के लिए ईश्वर ही ध्यान का सर्वोत्तय विशय है। ईश्वर पूर्ण, नित्य, सर्वव्यापी, सर्वज्ञ तथा सर्वदाश रहित है। योग के अनुसार ईश्वर के अस्तित्व के लिए निम्नोक्त प्रमाण दिये जाते है जहॉ तारतम्य है वहॉ सर्वोच्च का होना नितान्त आव-यक है। ज्ञान में न्यूनाधिक्य है। अतः पूर्ण ज्ञान तथा सर्वज्ञता का होना निसन्देह है जो पूर्ण ज्ञान या सर्वज्ञ है वही ईश्वर है। प्रकृति और पुरूश के संयोग से संसार की सृश्टि का आरम्भ होता है। संयोग का अन्त होने पर प्रलय होता है। पारस्परिक संयोग या वियोग पुरूश और प्रकृति के लए स्वाभातिक नही है अतः एक पुरूश विशेश का अस्तित्व परमावश्यक है जो पुरूशों के पाप तथा पुण्य के अनुसार पुरूश तथा प्रकृत से संयोग या वियोग स्थापित करता है।

योग दर्शन के अनुसार ईश्वर

पंतजलि ने योग सूत्र में ईश्वर का लक्षण इस प्रकार से किया है-

''क्लेश कर्मविाकार-यैरपरामृश्टः पुरूश विशेश ईश्वरः''

अर्थात अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेश तथा अमिनिवे-ा इन पॉच क्ले-ाो से, पुण्य एवं पाप कर्मो से, कर्मो से उत्पन्न जाति, आयू तथा भेग रूप फलों से, उनमें उत्पन्न वासनाओं से (जो चित्त में रहते है) असंस्पृश्ट एवं विशेश प्रकार के पुरूश को ईश्वर कहते है।

Copyright © 2012 Published by IJAER. All rights reserved.

इस सन्दर्भ में डा0 उमेश मिश्र का कथन दृश्ज्ञव्य है-

ईश्वर के स्वरूप को अन्य जीवो के स्वरूप के साथ तुलना दिखाकर स्पश्ट करना आवश्यक है प्रश्न होता है कि ईश्वर क्या ‘केवली पुरूश‘ के समान है समाधान में कहा जाता है - नहीं । प्राकृतिक वैकारिक तथा दाक्षिणिक इन तीन बन्धनों कं मुक्त होकर ही जीव केवली पुरूश होते है, किन्तु ईश्वर में न कभी बंधन था। और न कभी होगा। इसलिए ईश्वर केवली पुरूश से भिन्न है।

मुक्त पुरूशों से भी भिन्न ईश्वर है, क्योंकि ‘मुक्त पुरूश‘ पहले बन्धन में रहकर पश्चात मुक्त होते है। जैसे- कपिल आदि ऋशि पहले बन्धन में थे पश्चात मुक्त हुए ईश्वर पुर्व में कभी भी बन्धन में नही था। इसलिए मुक्त पुरूशें से भी भिन्न ईश्वर है।

प्रकृति को ही आत्मा समझने वाला पुरूश शरीर का नाश होने पर अर्थत मरने पर, प्रकृत लीन हो जाता है अथवा प्रकृति लीन पुरूश मुक्तवत होकर भी पुनः हिरण्यमर्भ के स्वरूप को धारण करता है। इस प्रकार प्रकृति लीन पुरूश को उत्तर काल में बन्धन होने की सम्भावना रहती है ईश्वर को उत्तर काल में भी बन्धन नही होता इसलिए ईश्वर प्रकृति लीन पुरूश से भिन्न है।

ईश्वर में ज्ञान शक्ति इच्छा शक्ति, क्रिया-क्ति आदि गुण हैं इसलिए यह ईश्वर कहा जाता हैं। प्रकृश्ट सत्वरूप उपादान के कारण ही ईश्वर में शा-वतिक उत्कर्श है, अर्थात ईश्वर में अनादि विवेक ख्याति है एविज्ञता ईश्वर सदा मुक्त तथा सर्वभाविधिश्ठातृत्व है। यह सवीयेक्षया उत्तम अर्थात और सदा ईश्वर निरातिशय है ईश्वर से अध्कि अतिशय गुण सम्पन्न दूसरा कोई नहीं हो ईश्वर वही है, जिसमें उपयुक्त गुणों की पराकाश्ठा हो।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

	कल्याण	योगांक गीताप्रेस, (व-र्ा 10,अंक 2,25) 1992
2	तैत्तिरीयोनि-द्	कल्याण उपनि-द अंक, गीताप्रेस गोरखपुर
3	छान्दोग्योपनि-द	कल्याण उपनि-द अंक, गीताप्रेस गोरखपुर
4	श्रीमद् भागवत्गीता	कल्याण गीता-तत्वाइक टीकाकार जयदयाल गोयनदका गीताप्रस गोरखपुर,संवत 2048
5	स्मारिका	1972, भारतीय लोक परि-द्
6	आचार्य बलदेव उपाध्याय आचार्य	भारतीय दर्शन

Copyright © 2012 Published by IJAER. All rights reserved.

7	शिक्षा के सामान्य सिद्धान्त	श्री एस0डी0त्यागी, पी0डी0पाठक, विनोद पुस्तक मंदिर,आगरा
8	चौधरी सत्यनारायण	गंगासार व चार धाम माहात्म्य्
9	मुसलगाँवकर डा0 गजानन ्रास्त्री	साँख्य तत्व कौमुदी
10	सुधाशुं जी महाराज	जीवन संचेतना-दिसम्बर 09
11	महेश चन्द्र ्रार्मा	प्रस्थान चतु-य में भारतीय दर्शन
12	चन्द्रधर ्रार्मा	भारतीय दर्शन
13	रामशक्ल पाण्डेय	भारतीय दर्शन
14	उमेश चन्द्र(उमेश कुमार)	भारतीय दर्शन
15	एस0सी0 चट्टोपाध्याय	भारतीय दर्शन
16	डा0 लक्ष्मीकान्त ओड.	भारतीय दर्शन
17	डा0 नरेन्द्र सिंह ्रास्त्री एवं डा0 हरिदत्त ्रास्त्री	भारतीय दर्शन ्रास्त्र का इतिहास
18	डा0 भटनाकर,श्रीमती रत्नादेव	ज्ञान मीमांशा और तत्व मीमांशा
19	डा0 आर0 ए0 ्रार्मा	तत्व मीमांशा, ज्ञान मीमांशा, मूल्य मीमांशा एवं शिक्षा
20	स्वामी राम सुख दास	गीता-- प्रबोधनी ,गीता प्रेस गोरखपुर
21	प्रो0 हरिन्द्र सिंह सिन्हा	भारतीय दर्शन की रूप रेखा
22	मणि ्रार्मा	स्मकालीन भारतीय शिक्षा दर्शन
23	रमन बिहारी लाल	शिक्षा के दार्शिनिक एवं समाजशास्त्रीय सिद्धान्त

IJAER

24	राम्‌ाक्ल पाण्डेय	उदयीमान भारतीय समाज में शिक्षक
25	रमाशंकर भट्टाचार्य	सांख्य तत्व कौमुदी
26	दिनेश राय द्विवेदी	सांख्य का सार
27	सांख्य दर्शन	ीजजचरू ध्धीपय इतंरकपेबवअमतलण्वतह ध्पदकमगण चीचघ ज्पजसमत्र:मवः4:इ8: मवः4
28	सांख्य दर्शन	ीजजचरूध्ध्ूण्उंदजतंण्वतहण्पदध्लवरंध्उलूमइध्पदकपंद चीपसवेवचील ीपदकप ीजउ
29	सांख्य दर्शन	ीजजचरूध्ध्दपूमइपचमकपसनंण्वतहध्नसपामःमवः4ण्लंकःमवः4:मवःण्ण
30	सांख्य दर्शन	ीजजचरूध्ध्ूतलेंउंररंउदंवितएवतहध्ेंदीीं कंतेंद ीनउ
31	सांख्य दर्शन से दुखों का निवारण	ीजजचरूध्ध्पदण्रंहतंदण्लीववण्बवउ ध्कींतउध्च्वंहमत्रंतजपबसम –बंजमहवतलत्र108 ंतजपबंसम
32	सांख्य दर्शन	ीजजचरूध्ध्ेतपचतंउदंजीहलवहंदचममजीण्वतहध्ेंदीीलं कंतेंद
33	सांख्य दर्शन	ीजजचरूध्ध्ेंजलहपण्इसवहे चवजण्बवउध्2009ध्10ध्इसवह चवतजण10 ीजउस
34	गुरू शिष्य और धर्म की महत्ता	आर. ए. शर्मा

IJAER